Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 17, Issue No. 2, October-2020, ISSN 2230-7540

ऋतुसंहारम् एवं किष्किन्धाकाण्डम् (वर्षा एवं शरद ऋतु के संबंध में)

Dr. Gopesh Kumar Tiwari*

सार – "रामायणं नाम परं तु काव्यम्" (1) "वरं वरेण्यं तु काव्यम्" (2)"संकल्पितार्थप्रदमादिकाव्यम्" (3) रामाणमादिकाव्य स्वर्गमोक्षप्रदायकम्"(4) इस प्रकार रामायण की गाथा अमित है। रामायण के पठन-मनन मात्र से धर्म- अर्थ काम-मोक्ष चारों की सिद्धी हो जाती है। रामायण को सामाजिक मर्यादा का अनुपम नीति मानकर चलने वाले या मत प्रस्तुत करने वालों की संख्या तो वहीं आध्यात्मिक आधार मानकर चलने वाले सज्जनों की संख्या पर्याप्त है, तो वहीं कुछ विद्वान साहित्य का अनुपम आदर्श मानकर उसकी सतत् साधान में तल्लीन रहते है। यहीं परम्परा अनेक कालों से अनवरत चलती रहीं है।

----------X----------

हमारे अनेक रससिद्ध कवियों का नाट्क परम्परा के आचार्यो का मूल रामायण ही है। उन समस्त विद्वानों का लेखन ग्रन्थादि रामायण महाभारत का उपजीव्य मात्र है। जिसमें उन समस्त विद्वानों के कृतित्व अथवा भावाव्यक्ति अत्यन्त अनुपम है। जिनकी रचनायें इस समाज को रसमय बनाकर रखा है यदि ऐसा न हो तो निरस ही रह जाता यह समाज -

'श्रंगारी चेत् कविः काव्यो जातं रसमयं जगत्।

स एव वीतरागष्चेन्नीरसं सर्वतमेव तत्।। [5]

महाकवि कालिदास उपमा देने में अत्यन्त चतुर है, किसी भी दृष्य किसी भी वर्ण्य विषय को इतनी चतुरता से सामने रखते है मानो वो शब्द रचना इनकी प्रतिक्षा में हो-

"गच्छति पुरः शरीरं धावति पष्चादसंस्तिं चेतः।। [6]

आदिकवि वाल्मीकि जी का प्रभाव हमें देखने को मिलता है। जब हम ऋतुसंहार की बात करें और उसमें भी वर्षा ऋतु का तो उसका एक अलग ही छंटा दिखलाई पड़ती है। भागवान राम के माध्यम से वाल्मीकि जी ने वर्षा ऋतु को चित्रण किया है, तो वहीं महाकवि कालिदास श्रृड्ढररस प्रधान रचना या चित्रण किया है जिसमें प्रियतम अपनी प्रियतमा के माध्यम से चित्रण किया है।

महर्षि वाल्मीकि आदिकवि है जिनके माध्यम से करूण रस की निष्पत्ति माना जाता है। यद्यपि वे करूणरस का जनक है तथापि उनका श्रृंगार रस अद्भूत है। वर्षा ऋतु का वर्णन में प्रायः उन्होने श्रृगार रस का भी अवलम्बन किये है। यहां अन्य अलंकारों का भी अत्यन्त विशिष्ट लक्षण भी प्रस्तुत हैं। इस शीर्षक के अन्तर्गत आदिकवि वाल्मीकि एवं महाकविकालिदास जी के वर्षा कालीन रचना का समानार्थक स्वरूप प्रस्तुत है। महाकविकालिदास की प्रायः समस्त रचनाएं पूर्व ग्रन्थो से अभिप्रेरिति या विषयवस्तु हो सकते है। पर विलक्षण बुद्धि से संवारा है पात्रों के अन्तरानुभूति को प्रगट किये है, क्या यह कालिदास जी की कहीं स्वानुभूति तो नहीं है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में पुत्री विदा पर पिता का जो भाव होता है उस भाव का केन्द्र कहीं स्वयं तो नहीं हैं। मेघदूतम् जो अमर काव्य है उस यक्ष का भाव कहीं स्वयं का तो नहीं है ऐसे ही कई उदाहरण उनके विषय में हो सकता है। पर महाकवि कालिदास अपनी इस रचना में पूर्व कवि आदिकवि वाल्मीकि का अनुसरण अवष्य किये है कुछ इसी भावार्थ को यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

नितान्तनीलोत्पलपत्रकान्तिभिः
क्वचित्प्रभिन्नांजनराशिसन्निभैः। [7]

क्वचित्सगर्भप्रमदास्तनप्रभैः समाचितं व्योम घनैः
समन्ततः।।

क्वचित्प्रकाशं क्वचिदप्रकाशं, नभः प्रकीर्णाम्बुधरं विभाति। [8]

www.ignited.in

क्वचित् क्वचित् पर्वतसंनिरूद्धं रूपं रूपं यथा शान्तमहार्णवस्य।।

जलाहकष्चाषनिशब्दमर्दलाः सुरेन्द्रचायं दधतस्तडिद्गुणम्। [9]

सुतीक्ष्णधारापतनोग्रसायकैस्तुदन्ति चेतः प्रसभं प्रवासिनाम्।।

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति ध्यायन्ति नत्यन्ति समाष्वसन्ति। [10]

नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः प्रियाविहिनाः शिखिनः प्वलवगंमाः।।

प्रभिन्नवैदूर्यानिभैस्तृणाडकुरैः समचिता प्रोत्थितकन्दलीदलैः। [11]

विभाति शुक्लेतररत्नभूषिता वाराड्ढनेव क्षितिरिन्द्रगोपकैः।।

बालेन्द्रगोपान्तरचित्रितेन विभाति भूमिर्नवषाद्वलेन। [12]

गात्रानुपृक्तेन शुकप्रभेण नारीव लाक्षोक्षितक्रम्बलेन।

विपत्रपुष्पां नलिनीं समुत्सुका विहाय भृड्ढाः श्रृतिहारिनिः स्वनाः। [13]

पतन्ति मूढाः शिखिनां प्रनृत्यतां कलापचक्रेशु नवोत्पलाषया।।

नवाम्बुधाराहतकेसराणि द्रुतं परित्यज्य सरोरूहाणि। [14]

कदम्बपुष्पाणि सकेसराणि नवानि हष्टा भ्रमराः पिबन्ति।।

कदम्बसर्जार्जुकेतकीवनं विकम्पयंस्तत्कुसुमाधिवासितः। [15]

ससीकराम्भोधरसंगषीतलः समीरधः कं न करोति सोत्सुकम्।।

कदम्बसर्जाजुनकन्दलादया वनान्तभूमिर्मधुवारिपूर्णा। [16]

मयूरमत्ताभिरूतप्रनृत्तैरापानभूमिप्रतिमा विभाति।।

नितान्तनीलोत्पलपत्रकान्तिभिः
क्वचित्प्राभिन्नांजनराशिन्निभैः। [17]

क्वचित्सगर्भप्रमदास्तनप्रभैः समाचितं व्योम घनैः समन्ततः।।

घनोपगूढं गगनं तारा न भास्करो दर्शनमभ्युपैति। [18]

नवैर्जलौघैर्धरणी वितृप्ता तमोविलिप्ता न दिश: प्रकाशा:।।

जब हम शरद ऋतु का वर्णन देखे तो पायेंगे वे दोनों कवि के रूप में अपना सर्वस्व लगा देते है, जहां महाकवि कालिदास श्रृंगार के माध्यम से प्रेम अपनी प्रेमिका को सम्बोधित करते हूए मर्यादा में रहते हुए मर्यादा के बाहर होकर मुक्त भाव से श्रृंगारिक वर्णन किया है। उनका पात्र मन को श्रृंगार भाव से पूर्ण करता हुआ वचन कहता है "हे प्रिये प्रसन्नचितावली रमणियों द्वारा, स्तनमण्डल पर चन्दनयुक्त मालाएं धारण की जा रही हैं तथा करधनियों से विपुल नितम्ब सजाये जा रहे हैं एवं श्रेष्ठ नूपरों से चरणकमल शोभित किये जा रहे हैं।"(19) इस प्रकार शब्दों की मर्यादा से बाहर होकर भी मर्यादा का ख्याल रखा गया है। वहीं आदिकवि महर्षि माल्मीकि का अपना पक्ष अद्भूत है उनका पात्र जगत नायक मर्यादापालक कण-कण का आस्था केन्द्र है, समग्र सृष्टि में जननायक है उनका व्यक्तित्व चरित्र दोनों अनुकरणीय है इसलिए आदिकवि को अपने पात्र का का ख्याल रखते हुए मुक्त भाव से ऋतु वर्णन का श्रेय है। उनका पात्र मर्यादा युक्त वचन कहते है- "सब ओर बिखरे हुए हंस ही जिनकी फैली हुई मेखला (करधनी) हैं जो खिले हुए कमलों और उत्पलों की मालाएं धारण करती हैं। उन उत्तम बावड़ियों की षेभा आज वस्त्राभूषणों से विभूषित हुई सुन्दरी वनिताओं के समान हो रही है।(20) वे दोनों अपनी तरीकासे श्रृंगार वर्णन बढ़े ही रोचक ढंग से करते है।

महाकवि कालिदास शरद-ऋतु आगमन का वर्णन श्लेषालंकार में करते हुए कहते हैं- काष के कपड़े वाली, प्रफुल्लित कमल के समान मनोरम मुखवाली मद से प्रादुर्भूत हंसो के ध्वनिरूप नूपुर की ध्वनियोंसे रमणीय, पके से धानों से सुन्दर, कृष शरीररूपी यष्टिवाली रम्या, नववधू के सदृश शरद ऋतु आ गयी हैं। (21) तो वही महर्षि वाल्मीकि का भी द्रष्टव्य है- इन्द्र इस पृथिवि को जलसे तृप्तकर अनाज को पकाकर कृतकृत्य हो गये। मेघ अपना सारा जल बरसाकर शान्त हो गया है, बादलों हाथियों मोरों और झरनों के शब्द शान्त हो गये है। पर्वत पहाड़ निर्मल दिख रहे हैं। मानो चन्द्रमा भी स्वच्छ हुआ है, आज शरद ऋतु सप्तच्छद (छितवन) की डालियों में सूर्य, चन्द्र और तारों की प्रभा में तथा श्रेष्ठ गजराजों की लीला में अपनी शोभा बांटकर आयी हैं। (22) इस तरह अपनी-अपनी प्रतिभा अपने ढंग से प्रस्तुत किये हैं।

मन्दानिलाकुलितचारूतराग्रशाखः
पुष्पोद्गमप्रचयकोमलपल्लवाग्रः।

मत्तद्विरेफपरिपीतमधुप्रसेकष्चित्तं विसारयति कस्य न कोविदारः।।

हे प्रिये! मन्द पवन से प्रचालित सुन्दर अग्रशाखा वाला, फूलों के प्रादुर्भाव से, कलियों के आधिक्य कोमल पल्लवाग्र वाला, मदोन्मत्त भौंरों के द्वारा पान किया हुआ मधुर रसवाला चमरिक का पेड़ किसके मन को विदीर्ण नहीं करता है (सब के मन को विदीर्ण करता हैं)। 23

मनोज्ञगन्धैः प्रियकैरनल्पैः पुष्पातिभारावनताग्रशाखैः।[24]

सुवर्णगौरैर्नयनाभिरामैरूद्योतितानीव वनान्तराणि।।

वन के भीतर बहुत से असन नामक वृक्ष खड़े हैं, जिनकी डालियों के अग्रभाग फूलों के अधिक भार से झुक गये हैं उनपर मनोहर सुगन्ध छा रहीं हैं। वे सभी वृक्ष सुवर्ण के समान गौर तथा नेत्रों को आनंद प्रदान करने वाले हैं, उनके द्वारा वनप्रान्त प्रकाशित से हो रहे हैं।।

तारागणप्रवरभूषणमुद्वहन्ती मेघावरोधपरिमुक्तशषांक वक्त्रा।[25]

ज्योत्स्नादुकूलममलं रजनीदधाना वृध्दिं प्रयान्यनुदिनं प्रमदेव बाला।।

हे प्रिये! तारागणरूपी अनेकों अलंकारो से अलंकृत होती हुई, मेंघो से युक्त चन्द्ररूपी मुखवाली,

चांदनी रूपी उज्जवल वस्त्रधारिणी मदोन्मत्ता बाला की तरह इस ऋतुकी, रातें प्रतिदिन वृध्दि को प्राप्त करती है।

रात्रिः शषांकोदतिसौम्यवक्त्रा तारागणोन्मीलितचारूनेत्रा।

ज्योत्स्नांशुकप्रावरणा विभाति नारीव शुक्लांशुकसंवृतांगी।।[26]

चांदनी की चादर ओढ़े हुए शरत्कालकी यह रात्रि श्वेत् साड़ी से ढके हुए अंगवाली एक सुन्दरी नारी के समान शोभा पाती है। उदित हुआ चन्द्रमा उसका सौम्य मुख है और तारे ही उसकी खुली हुई मनोहर आंखे हैं।।

चंचन्मनोज्ञशफरीरसनाकलापाः पर्यन्तसंस्थितसिताण्डजपंक्तिहाराः।

नद्यो विशालपुलिनान्तनितम्बबिम्बां मन्दं प्रयान्ति समदाः प्रमदा इवाद्या।[27]

मीनोपसंददर्शितमेखलानां नदीवधूनां गतयोऽद्य मंदाः।

कान्तोपभुक्तालसगामिनीनां प्रभातकोलेष्विव कामिनीनीनाम्।।[28]

उपर्युक्त दानों श्लोकों का भावार्थ प्रायः मिलती हुई है, नदी को स्त्री मानकर सौन्दर्य वर्णन किये है, मछली उस स्त्री की श्वेत करधनी है और उन्मत्ता स्त्री की भांति मन्द गति हो गयी है।

इस तरह वे दोनों ने अपनी-अपनी प्रतिभा का वर्णन प्रतिभा के साथ वर्णन किये हैं। बहुत्र महाकवि कालिदास जी आदि कवि महर्षि वाल्मीकि का अनुसरण करते हुए भी दिखलाई पड़ते हैं।।

इति शिवम्

संदर्भः-

(1) रामायण पृ. 33

(2) रामायण पृ. 33

(3) रामायण पृ. 33

(4) रामायण पृ. 33

(5) ध्वन्यालोक

(6) अभिज्ञानशाकुन्तलम्

(7) ऋ.सं. 2/2

(8) वा.रा.कि. सर्ग 28/17

(9) ऋ.सं. 2/4

(10) वा.रा.कि. सर्ग 28/27

(11) ऋ.सं. 2/5

(12) वा.रा.कि. सर्ग 28/24

(13) ऋ.सं. 2/14

(14) वा.रा.कि. सर्ग 28/42

(15) ऋ.सं. 2/15

(16) वा.रा.कि. सर्ग 28/34

(17) ऋ.सं. 2/2

(18) वा.रा.कि. सर्ग 28/47

(19) ऋ. सं. 3/20

(20) वा. रा. कि./49

(21) ऋ.सं. 03/01

(22) वा.रा.कि. 30/22, 23, 24, 25, 26, 27, 28

(23) ऋ.सं. 03/06

(24) वा. रा. कि. 30/34

(25) ऋ. सं. 3/07

(26) वा. रा. कि. 30/46

(27) ऋ. सं. 3/03

(28) वा. रा. कि. 30/54

Corresponding Author

Dr. Gopesh Kumar Tiwari*